International Journal of Sanskrit Research 2022; 8(5): 169-175

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2022; 8(5): 169-175
© 2022 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 07-07-2022
Accepted: 10-08-2022

ऋतेशा
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली, दिल्ली, भारत

Corresponding Author:
ऋतेशा
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
नई दिल्ली, दिल्ली, भारत

हरिजीवन मिश्र के संस्कृत प्रहसन

ऋतेशा

प्रस्तावना

हरिजीवन मिश्र ने आमेर के राजा रामसिंह (1667-1675 ई.) के समाश्रय में राजोचित प्रहसनों की रचना की।'[1] इनके पिता और पितामह क्रमशः लालमिश्र और वैद्यनाथमिश्र थे। कवि की प्रतिभा विलास का स्फुरण सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में हुआ। अद्भुततरंग प्रहसन के अन्त में उन्होंने अपने को सकल विद्याविशारद कहा है। हरिजीवन मिश्र प्रहसन के प्रणयन में विशेष रूचि लेते थे। उनके द्वारा छः प्रहसनों की रचना की गई। हरिजीवन मिश्र के प्रहसन हैं- अद्भुततरंग, प्रासंगिक, घृतकुल्यावली, पलाण्डुमण्डन विवुधमोहन, सहृदयानन्द। इसके अतिरिक्त उन्होंने विजयपारिजात नाटक एवं प्रभावली नाटिका का भी प्रणयन किया।[2] इस शोध-लेख में पण्डित हरिजीवन मिश्र के प्रहसनों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाएगा।

अद्भुततरंग प्रहसन

अद्भुततरंग प्रहसन मिश्र की पहली नाट्यकृति प्रतीत होती है। प्रस्तावना से ज्ञात होता है कि इसे उन्होंने महाराजा रामसिंह के आदेश पर लिखा था।[3] 'अद्भुततरंग' में प्रहसन के शास्त्रीय लक्षण के विरुद्ध 3 अंक हैं। तीनों अंकों की दृश्यस्थली राजसभा है। संभवतः मिश्र ने अपने राजसभा के अनुभवों के आधार पर यहाँ सभासदों को अतिशयोक्ति का पुट देकर हास्यास्पद एवं विडम्बनामूलक स्थितियों में प्रस्तुत किया है। अपने नाम के अनुरूप यहाँ हास्य की अद्भुत तरंगों की सृष्टि की गई है।

गौडरसमिश्र नामक वैष्णव ब्राह्मण राजा मदनांगविक्रम की सभा में प्रवेश करता है तथा अतिशयोक्तिमय पदावली में उसे आशीर्वाद देता है। राजा आशीर्वाद के स्थान पर उससे दंडवत् की अपेक्षा रखता है और आशीर्वाद देने के लिए ब्राह्मण को दण्ड देना चाहता है। दंडविधान जानने के लिए वह किसी धर्मशास्त्रज्ञ ब्राह्मण को बुलाने का आदेश देता है। विधवाविध्वंसक नामक ब्राह्मण बुलाया जाता है। जो गौधरस मिश्र की तुलना में अधिक पाखण्डी व्यक्ति सिद्ध होता है। वह एक पंडित है जो कवच धारण करता है, कदम-कदम पर पक्षियों को मारता है। कुत्ते के पिल्लों के साथ इधर-उधर क्रीडा करता है। पाखण्डपूर्ण ढंग से धार्मिक कृत्यों को सम्पन्न करता है। सदा उत्तम आचरण की बातें करता है परन्तु स्मृतियों से मिथ्या उद्धरण देकर संदेह उत्पन्न भी करता है।

राजा धर्माचार्य से पूछता है कि याज्ञवल्क्यस्मृति में असम्यक् आचरण के लिए कौन का दंड निर्धारित है? वह याज्ञवल्क्य स्मृति से मिथ्या उद्धरण देकर बताता है कि गौधरसमिश्र कामाग्नि कुण्ड में तप करे एवं विधवाविध्वंसक की पत्नी को तुष्ट करे यही उसके लिए दण्ड है। प्रसंगवश यह जानकर कि राजवैध यमानुज विधवाविध्वंसक की अर्श-व्याधि का उपचार नहीं कर सका है, राजा क्रुद्ध होकर राजवैद्य को बुलवाता है। राजवैद्य को भी यही दण्ड दिया जाता है । इसी दौरान यमानुज स्वीकार करता है कि उसके पास कामाग्निकुण्ड में तपस्या करने का पर्याप्त अनुभव नहीं है, एवं सुझाव देता है कि रामार्चनचंद्रिका नामक वेश्या को सहायता के लिए गुरु रूप में बुलाया जाए। रामार्चनचंद्रिका का प्रवेश होता है।

जम्भक विदूषक को शय्या सुसज्जित करने का आदेश दिया जाता है। दण्ड को पूर्ण करने के लिए विधवाविध्वंसक की पत्नी को उपस्थित किया जाता है। विदूषक जम्भक विधवाविध्वंसक की पत्नी का वेश बनाकर आता है, और राजा उसे न पहचान कर राजवैद्य के साथ शयनागार में भेज देता है। शयनागार में जाकर यमानुज को जम्भक की वास्तविक पहचान उजागर होती है जिसे वह विधवाविध्वंसक की पत्नी मान रहा था, वास्तव में वह तो स्त्रीवेष में जम्भक विदूषक निकला। राजा को किञ्चित् सन्देह हुआ कि जम्भक बाहर जाकर विधवाविध्वंसक की पत्नी के वेश में लौट आया होगा। उसका सन्देह कहीं सच तो नहीं, यह सुनिश्चित करने के लिए राजा द्वारपाल से जम्भक को अपने समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश देता है। लेकिन द्वारपाल ऐसा न करके सिर्फ मुस्कुराता है और शान्त खड़ा रहता है। अब राजा को प्रतीति हो चुकी थी कि उसके अक्षम चिकित्सक को वास्तव में विदूषक द्वारा कितनी उचित सजा दी गई है। राजा के लिए यह 'अद्भुत' था।

प्रासंगिक प्रहसन

"प्रासंगिक" हरिजीवन मिश्र का दूसरा प्रहसन है। इसका भी दृश्य राजसभा का है। पहले प्रहसन की तुलना में यह शास्त्रीय लक्षणों के अधिक अनुरूप है। इसका प्रत्येक पात्र अपने वाक्य का प्रत्येक शब्द 'प्र' से प्रारम्भ करके ही बोलता है। 'प्र' की इस अद्भुत आनुप्रासिकता के कारण प्रहसन का नाम “प्रासङ्गिक" रखा गया है।[4] इस प्रकार यह प्रहसन 'प्र' की शाब्दिक क्रीडा के द्वारा हास्य- निर्झरिणी प्रवाहित करने के उद्देश्य से प्रणीत है।[5]

पात्रों के नाम भी प्रायः 'प्रादि' हैं। राजा प्रताप पंक्ति अपनी राजसभा में 'प्रेरक' नामक विदूषक के साथ बैठा है। राजा वेद-शास्त्र - चर्चा सुनना चाहता है। राजा विदूषक से कहता है कि पण्डितों को दरबार में उपस्थित होने की आज्ञा दी जाए । विदूषक प्रश्न करता है कि 'क्या मैं पण्डित नहीं हूँ? राजा विदूषक की बात अनसुनी कर देता है और कहता है कि 'प्रेरक, यहाँ आज केवल वेद-शास्त्र चर्चा होगी।' विदूषक पुनः प्रश्न करता है कि 'क्या मुझे वेद ज्ञान नहीं हैं? यह कहकर तुरन्त उदात्तादि स्वर सहित हस्तस्वर का प्रदर्शन करते हुए वेदपाठ का उच्चारण प्रारम्भ कर देता है। राजा उसकी मूर्खतापूर्ण गतिविधियों से रुष्ट होकर उसको पाठ बन्द करने का आदेश देता है। अब सभा में पंडित केरल भट्ट और प्रकृष्टदेव का प्रवेश होता है। केरलभट्ट राजा को आशीर्वाद देने लगता है। महाराज प्रताप पंक्ति का मन्त्री प्रकृष्टदेव 'प्र' का प्रचारक है। केरलभट्ट 'प्र' का विरोधी है। प्रकृष्टदेव, केरलभट्ट के आशीर्वाद के प्रत्येक वाक्य को 'प्रहीण' बताकर आपत्ति करता है। उसका अभियोग है-

> “रे रे प्रेत, तवैतैः प्रहीणवचनैर्मे प्राणाः प्रमथिताः ।
> यतो हि प्रकृष्टार्थं विहाय किमन्यत् प्रयोजयसि प्रसभम्?"

प्रकृष्टदेव की पत्नी प्रकृतिप्रिया भी उसके साथ है । वह पति के कथन का समर्थन करती है-

> "प्रायोऽस्ति प्रयोजनं प्रतारकस्यास्य स्वात्मप्रहरणरूपम्।"

केरलभट्ट तथा प्रकृष्टदेव के बीच वाक्कलह हाथापाई तक जा पहुँचता है। प्रकृष्टदेव बलपूर्वक राजा से कहता है कि 'प्र' हीन वचन का प्रयोग करने के लिए केरलभट्ट को दण्डित किया जाना चाहिए। केरलभट्ट उत्तर देता है कि "ऐसे शब्द उसके कानों को अप्रिय हैं।" राजा ने प्रकृष्टदेव से सहमत होते हुए कहा कि नि:सन्देह राजसभा में प्रत्येक व्यक्ति को प्रपूर्वक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए, जिसका अर्थ है 'सर्वोत्तम' और यह वक्ता के ज्ञान को इंगित करता है। राजा प्रकृष्टदेव से प्रभावित होकर स्वयं भी प्रकार बहुल पदावली में बोलने लगता है और प्रकृष्टदेव प्रसन्न होकर “प्राञ्जलम्, प्राञ्जलम्" कह कर उसकी प्रशंसा करता है। केरलभट्ट भी राजा को प्रसन्न करने के लिए 'प्राञ्जलं, प्राञ्जलम् कहना चाहता है, पर उसके मुंह से “साधु, साधु" निकलता है। इस प्रकार यह सम्पूर्ण दृश्य, जिस सभा का आयोजन वेदों और शास्त्रों की चर्चा के उद्देश्य से किया गया था, वह कोलाहलपूर्ण क्षुद्र

झगड़े की भेंट चढ़ जाता है। यह दृश्य हमें अनायास ही एक सीख दे जाता है कि हरिजीवनमिश्र ने इस प्रसंग को उठाकर, राजसभा के विद्वानों का सच सटीक रूप से पाठकों के सामने उजागर किया है। इसी बीच केरल के कुछ लोग न्याय की गुहार लगाते हुए राजसभा में आते हैं। योनिमञ्जरी की गोद में शिशु है और इस बात को लेकर विवाद है कि उसका पिता कौन है- पति व्यंजनमुख या प्रेमी भट्टमार? ये दोनों भी उसके साथ हैं। इसी बीच राजसभा में एक वानर घुसकर प्रकृतिप्रिया को पकड़ लेता है और फर्श पर उसका घर्षण करता है । राजा यह सब देखकर विदूषक को वानर पकड़ने का आदेश देता है। विदूषक हिचकिचाते हुए कहता है कि ऐसी परिस्थिति में हस्तक्षेप करना खतरनाक है। जब प्रकृतिप्रिया को वानर ने मुक्त कर दिया तब प्रकृष्टदेव प्रसन्न होकर कहता है कि "हे प्रिया! आपके साथ कभी कुछ अमंगल न हो। " तदनन्तर जैसे ही व्यंजनमुख बंदर को मारने के लिए एक बड़ा पत्थर उठाता है, बंदर जाकर योनीमंजरी के केशों में उलझ जाता है। दोनों ही मुक्ति के लिए सशक्त प्रयत्न करते हुए दिखाई देते हैं। विदूषक जलती हुई लकड़ी का एक टुकड़ा उठाकर लाता है और उसे बन्दर के चारों तरफ घुमाता है। योनि मंजरी एवं बन्दर दोनों ही चारों तरफ परिक्रमा करते हुए भागते हैं। अन्त में जब योनिमंजरी के बालों का रिबन जलकर गिरता है तभी वानर भी मुक्त हो पाता है। उसके बाद वानर वहाँ से भाग जाता है और विदूषक तेजी से उसका पीछा करते हुए भागता है।

इस अशन्ति और भ्रम के बाद प्रकृष्टदेव अपनी पत्नी को राज दरबार से चलने का सुझाव देता है। भट्टमार भी उनकी बातें सुनकर बच्चे को लेकर वहाँ से जाने का प्रयत्न करता है। विदूषक उसको रोक लेता है और बच्चे से भट्टमार को पिता बोलने के लिए कहता है, बच्चा विदूषक की बात दोहराता है। यह देखकर योनिमंजरी और व्यंजनमुख को बहुत दुःख पहुँचता है क्योंकि वे बच्चे के पितृत्व की सच्चाई से परिचित थे। अचानक हुए हंगामे से संकेत मिलता है कि बन्दर रनिवास में प्रवेश कर गया है। राजा प्रसन्न होकर कहता है कि वानर को पकड़ने का काम पंडितों और प्रेमी तथा पिता के झगड़ों से अधिक रोचक है। इसके साथ ही राजा रनिवास की ओर प्रस्थान करता है और प्रहसन यहीं समाप्त हो जाता है।

सहृदयानन्द प्रहसन

विवुधमोहन की भांति ही 'सहृदयानन्द' भी काव्यशास्त्र के पांडित्य के प्रदर्शन के लिए लिखा गया है। सहृदयानन्द में अलङ्कार शास्त्र की अवधारणाओं को पात्र के रूप में खड़ा किया गया है और उनके द्वारा प्रहसन का ढांचा रचा गया है।[6] प्रस्तावना में ही सूत्रधार विलक्षणा (लक्षणा से अलग, व्यञ्जना) नायिका का वर्णन करता है। कमलपाणि नामक पंडित आलंकारिकों पर मिथ्यावाद का आक्षेप करते हैं। ब्रह्मानन्द जननी विलक्षणा (व्यञ्जना) नायिका के साथ यहाँ अभिधा और लक्षणा भी उपस्थित होती हैं। नाटककार ने अभिधा को स्वीया, पतिव्रता एवं लक्षणा, व्यंजना को क्रमशः सामान्या तथा परकीया नायिका बताया है। निरूढा लक्षणा चेटी कहती है कि आलंकारिक परकीया (व्यञ्जना) के साथ स्वैर विहार कर रहा है और पतिव्रता अभिधा विरह में दुःखी है। आलंकारिक से त्रस्त होकर अभिधा वारवधू लक्षणा के पास जाना चाहती है। अभिधा तथा दासी निरूढा लक्षणा के बीच तथा दूसरी ओर आलंकारिक और व्यंजना के बीच विवाद छिड़ जाता है।

इसके पश्चात् द्वितीय अंक प्रारम्भ होता है। एक धोबिन और धोबी प्रवेश करते हैं जिनके गधे खो गए हैं। ब्रह्मचारी दीक्षादण्ड एक गधे पर बैठा हुआ आता है। धोबिन की उससे कलह होती है। प्रकरण कोतवाल के सामने लाया जाता है। कोतवाल भी अपने गधे पर सवार होकर आता है। कोतवाल यह प्रकरण निर्णय के लिए रसप्रतिबन्धक नामक धर्माधिकारी को सौंप देता है।

रसप्रतिबन्धक अपने दो शिष्यों- वाक्यार्थपरिभ्रष्ट तथा गुणापकर्ष के साथ आता है। कोतवाल बताता है कि धर्माधिकारी रसप्रतिबन्धक के आदेश पर उसी ने नगर के सहृदयों को गधों पर बिठाकर सवारी निकलवाई थी। धर्माधिकारी घोषणा करता है कि नगर के सारे सहृदयों को रसास्वाद के अपराध का यहीं दंड दिया जाए धर्माधिकारी व्यञ्जना को बुलवा कर उस पर भी व्यभिचार का आरोप लगाता है। आलंकारिक वहाँ आकर स्वयं गधे पर सवारी का दंड सहर्ष स्वीकार करता है। तभी रसप्रतिबन्धक की ज्येष्ठा पत्नी डाकिनी व्यञ्जनमाला जो अश्लील, अगूढ आदि दोषों की प्रतीक है, अश्लील रूप में ही उपस्थित हो जाती है। उसके साथ उसकी दासी पातकपोतिका भी है। रसप्रतिबंधक उसके साथ नग्न स्वैराचार करने लगता है।

वाक्यस्फोटिका तथा स्मृतिविभ्रमा नामक दो स्त्री पात्रों का मेष (भेड़) पर सवार होकर आने तथा मेष युद्ध का दृश्य इसके बाद आता है। इस सारे संभ्रम का अंत इस घोषणा के साथ होता है कि कवि के आश्रयदाता महाराज रामसिंह मृगया से लौट लाए हैं, जिसे सुनते ही रसप्रतिबन्धक तथा उसका दल मंच से पलायन कर जाता है।

इस प्रकार हमने देखा कि हरिजीवन मिश्र के प्रहसन में कल्पना की उर्वरता और अनोखापन है। हास्य की उनकी पकड़ बड़ी पैनी है और अपने पांडित्य का भी प्रतीकात्मक संविधान की रचना में उन्होंने खूब उपयोग किया है।

विबुधमोहन प्रहसन

हरिजीवन मिश्र प्रहसन के प्रणयन में विशेष रूचि लेते थे। उनके विवुधमोहन नामक प्रहसन का आरम्भ पुष्पकलिका नामक कवयित्री के एक नये प्रकार के नान्दी से होता है । वही नान्दी पाठ भी करती है। उसकी एकोक्ति रूप में प्रस्तावना के पूर्व 15 पद्यों और अनेक गद्यांशों से संबंधित पाठ में विष्णु की स्तुति प्रमुख है। विष्णु - मूर्ति की तीन बार प्रदक्षिणा करते हुए वह कहती है

यानि कानि च पापानि ब्रह्महत्याशतानि च।
तानि सर्वाणि नश्यन्तु प्रदक्षिणपदे पदे ।।

इसके पश्चात् दक्षिणा देने के विषय में पुष्पकलिका कहती है कि मेरी परीक्षा ही दक्षिणा है। इसके पश्चात् वह सदालोचकों और सत्पुरुषों की प्रशंसा करती है। इसके अनन्तर प्रहसन प्रारम्भ होता है।

सकलागमाचार्य की कन्या साहित्यमाला अर्थालङ्कार के लिए समुत्सुक है, क्योंकि उसका विवाह अखण्डानन्द नामक विद्वान् से होना निश्चित हुआ है। सकलागमाचार्य ने अपने परिवार का भार अपने पुत्रों पर छोड़ दिया है, जिनमें से प्रत्येक अपने स्वयं के शास्त्रों की शाखा में विशेषज्ञता रखता है। उसकी पुत्री का विवाह एवं परिवार का भरण-पोषण उसके पुत्रों के ज्ञान पर राजा की कृपादृष्टि के बिना संभव नहीं होगा। पिता अपने बेटों से शाही दरबार में जाने का आग्रह करता है क्योंकि इस समय राजा अपने राज्य के पण्डितों के साथ ज्ञान - चर्चा में शामिल होना चाहता है।

साहित्यमाला के भाई पिता की आज्ञानुसार प्रतापमार्तण्ड नामक राजा की सभा में उपस्थित होते हैं। वहाँ तर्ककर्कश, ज्ञानेन्द्र भट्टमीमांसक, सांख्यानन्द, पातंजलनाथ, वैशेषिक भट्टाचार्य, पाशुपत, पाञ्चरात्रिक और अखण्डानन्द ने सृष्टिकर्ता के अनुसन्धानविषयक शास्त्रार्थ में अपने मत का समर्थन और दूसरों के मत का खण्डन किया। जगत् का कारण कौन है - इस प्रश्न का सबका उत्तर भिन्न-भिन्न था। अखण्डानन्द ने समझाया कि वेदान्ती का ब्रह्मानन्द रस सर्वोपरि तो है, पर उसे प्राप्त करने के लिए श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि की आवश्यकता है और "काव्यरसानुभवस्तु श्रवणसमनन्तरमेव विगलितवेद्यान्तरं प्रकाशते।"

अखण्डानन्द का काव्यरसवाद सबसे ऊपर रहा। उन्होंने नेता बनकर राजा को आशीर्वाद दिया –

वक्त्राणि पंचकुचयो प्रतिबिम्बितानि दृष्ट्वा दशाननसमागमभ्रमेण।
भयोऽपि शैलपरिवृत्तिभयेन गाढमालिंगतो गिरिजया गिरिणोऽवताद्वः॥

राजा ने मत दिया-

"अहो साहित्यरसानुभवो ब्रह्मरसाप्यधिक एव नात्र सन्देहः।"

काव्यरस में भी रसराज शृङ्गार को अखण्डानन्द ने उच्चतर बताया। इसे सिद्ध करने के लिए अखण्डानन्द ने नीचे का पद्य पढ़ा-

मुग्धे मुग्धतयैव नेतुमखिलः कालः किमारभ्यते
मानं धत्स्व धृतिं बधान ऋजुतां दूरे कुरु प्रेयसि।
सख्यैवं प्रतिबोधिता प्रतिवचः तामाह भीताननना
नीचै शंस हृदि स्थितो हि ननु मे प्राणेश्वरः श्रोष्यति।।

इसे सुनकर राजा मुग्ध हो गया, पर अन्य पण्डितों ने इसे दोषयुक्त बताया। अनेक सरस पद्यों को सुनाकर अखण्डानन्द ने राजा को मोह लिया। उसने कहा 'किम् देयं साहित्यरसिकाय' । अखण्डानन्द ने साहित्य माला के लिए निवेदन किया। साहित्यमाला के भाई पण्डितों ने देखा कि राजा ने अखण्डानन्द को धन दिया। उन्होंने कहा कि दीनहीन रहकर कैसे हम अखण्डानन्द का वर रूप में स्वागत कर सकेंगे। राजा ने उन्हें भी यथेष्ट धन दिया | साहित्यमाला के विवाह का उत्सव आरम्भ हुआ, जिसे राजा ने भी महल की छत पर चढ़कर देखा ।

हरिजीवन मिश्र का यह प्रहसन सरल भाषा में संयत भावों को लेकर विकसित है। इसमें अश्लीलता और नग्न परिहासों का अभाव है।

पलाण्डुमण्डन प्रहसन

'पलाण्डुमण्डन' की सम्पूर्ण परिकल्पना हरिजीवन मिश्र की मौलिक प्रतिभा और हास्यसृष्टि की अनोखी रचना की परिचायक है। इसके अधिकांश पात्रों के नाम उन खाद्य वस्तुओं के नाम पर हैं, जिन्हें वे विशेष पसंद करते हैं। यह प्रहसन भारत के विभिन्न क्षेत्रों के ब्राह्मणों की भोजन की आदतों पर एक व्यंग्य के रूप में रचित है। प्रधानभूता नायिका का नाम चिञ्चा (इमली), नायिका की सपत्नी पूर्णपोलिका की पुत्री रक्तमूलिका (गाजर) है। इसी प्रकार

रक्तमूलिका के भावी वर लशुनपन्त तथा गृञ्जनाद्री भी लशुन (लहसुन) के वाचक हैं। निमन्त्रित किए गए ब्राह्मणों में प्रधानभूत नायक पलाण्डुमण्डन (प्याज) है। जिसके नाम से ही प्याज के लिए उसका प्रत्यक्ष प्रेम प्रकट होता हैं।[7]

ब्राह्मण लिङ्गोजीभट्ट की दूसरी पत्नी चिञ्चा का गर्भाधान का उत्सव हो रहा है। लिङ्गोजीभट्ट की पत्नी पूर्णपोलिका अपनी ननद क्रथिका को बताती है कि उसकी बेटी रक्तमूलिका उसके छोटे पुत्र गृञ्जनाद्री से प्रेम करती है। गृञ्जनाद्री क्रथिका और त्र्यम्बक भट्ट का पुत्र है। पर क्रथिका का ज्येष्ठ पुत्र वृद्ध लशुनपन्त भी रक्तमूलिका को चाहता है, और उसकी प्राप्ति की आशा से ही अब तक जीवित है। लिङ्गोजीभट्ट तर्क देते हैं कि लशुनपन्त तो गृञ्जनाद्री से बड़ा है इसलिए रक्तमूलिका के साथ लशुनपन्त का सम्बन्ध उचित नहीं है।

इसी अवसर पर लशुनपन्त का प्रवेश होता है। गृञ्जनाद्री और रक्तमूलिका की विवाह - वार्ता सुनकर क्रोधित लशुनपन्त लिङ्गोजीभट्ट की फटकार लगाता है। वाद-विवाद के अनन्तर क्रथिका के द्वारा लालच देने के बाद स्वर्ण के बदले में लोभवश लिङ्गोजीभट्ट गृञ्जनाद्री को छोड़कर लशुनपन्त के साथ विवाह के लिए सम्मति प्रदान करता है । इस प्रकार धनबल से वृद्ध लशुनपन्त का विवाह न्यूनवया रक्तमूलिका से होना निश्चित हो जाता है।

दहेज एवं धन के समझौते के अनन्तर ब्राह्मणों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया जाता है। रक्तमूलिका प्रवेश करती है। इसी समय लशुनपन्त को ग्रहण करने की इच्छा रखती हुई रक्तमूलिका से पूरणपोलिका कहती है कि "पुत्रि ! यह वर निश्चित रूप से तेरे योग्य ही है।" पूरणपोलिका का वाक्य सुनकर लशुनपन्त जैसे ही अट्टहास करता है तभी खाँसी की अधिकता से मूर्च्छित हो जाता है। लशुनपन्त की चेतना लौटाने के लिए विविध प्रकार की औषधियों का सुझाव दिया जाता है। उनमें से ज्यादातर जड़ी-बूटियाँ और सब्जी की जड़ें हैं, जिनका उस धार्मिक समारोह में कोई स्थान नहीं है। प्रत्येक पात्र सहजता से अपने पसंदीदा खाद्य पदार्थ से लशुनपन्त का उपचार करता है, परिणामस्वरूप सम्पूर्ण कक्ष रसोई के सामानों से भर जाता है । चिञ्चा द्वारा रक्तमूलिका को आदेश दिया गया कि वह चिञ्चारस के साथ रक्तमूलिकारस को मिलाकर लशुनपन्त को पिलाए । इसी क्षण मिथ्याकूट नामक पात्र मिथ्या कूटरस लेकर लशुनपन्त के मुख में डालता है। मिथ्याकूटद्रव के चमत्कार से लशुनपन्त अपनी मूर्च्छा को त्याग देता है।

तदनन्तर सामग्री सहित कलङ्काङ्कुराचार्य का प्रवेश होता है । वह गर्भाधानसंस्कार प्रारम्भ करने के लिए वेदिका पर कुश के प्रतिनिधिरूप में लहसुन और प्याज के छिलकों को बिछा देता है। गर्भाधान के अवसर पर लिङ्गोजीभट्ट चिञ्चा के प्रति कामचेष्टा करता है। चिञ्चा पुत्र प्राप्ति के लिए लक्ष्मणा नामक औषधि का सेवन करती है। लिङ्गोजी भट्ट भी पुरुषत्ववर्धक पलाण्डु का भक्षण करते हैं।

गर्भाधान संस्कार के दौरान ही बंगाली ब्राह्मण भट्टाचार्य अपने शिष्यों के साथ प्रवेश करता है। शिष्य हाथों में तीन दिन से सड़ी हुई मछलियों को लिए हुए हैं जो उन्होंने अपने गुरु के भोजन के उद्देश्य से रखी हुई हैं। जैसे ही भट्टाचार्य घर में प्रवेश करते हैं, वे अपनी नाक बंद कर लेते हैं क्योंकि उन्हें प्याज की गन्ध बर्दाश्त नहीं होती। पलाण्डुमण्डन के नेतृत्व में दाक्षिणात्य ब्राह्मण कहते हैं कि वे सड़ी हुई मछलियों की गंध को बर्दाश्त नहीं कर सकते। जिस तरह से बंगाली ब्राह्मण उन्हें खाते हैं, उसे देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है जैसे शास्त्र में मांसभक्षण का विधान हो । प्रत्युत्तर में औदीच्य ब्राह्मण कहते हैं कि शास्त्रों में मत्स्य भक्षण निषिद्ध नहीं है, अन्य युगों में इसके भक्षण का निषेध है किन्तु कलियुग में नहीं। उनकी असहमति एक हिंसक संघर्ष में बदल जाती है एवं बहस तीव्रतर होने लगती है। जगदीश, जो एक दाक्षिणात्य ब्राह्मण है, चुपके से घर से बाहर निकलता है और राजकीय पुरुष को साथ लाकर पुनः घर में प्रवेश करता है । चालाकी से जगदीश राजकीय पुरुष को विश्वास दिलाता है कि भट्टाचार्य उनके विनाश के लिए कुछ तांत्रिक प्रयोग कर रहा है। लहसुन, प्याज आदि की अधिकता वहाँ देखकर सिपाही भी उस पर विश्वास कर लेता है। सिपाही बंगाली ब्राह्मणों को गिरफ्तार कर लेता है। भट्टाचार्य दाक्षिणात्य ब्राह्मणों से सहायता की याचना करता है परन्तु दाक्षिणात्य ब्राह्मण सिपाही से कहते हैं कि भट्टाचार्य तो निश्चित रूप से बध्य ही है। राजकीय पुरुष सामग्री सहित शिष्यों के साथ भट्टाचार्य को गिरफ्तार करके निकल जाता है। दक्षिणात्य ब्राह्मण आपस में मिलकर प्रसन्नता प्रकट करते हैं कि उन्होंनें जगदीश की कृपा से शत्रु को जीत लिया है। तदनन्तर सुमुहूर्त में पुनः गर्भाधान संस्कार किया जाएगा ऐसा कहकर सभी प्रस्थान करते हैं। प्रहसन समाप्त होता है।

घृतकुत्याविलास प्रहसन

घृतकुत्याविलास हरिजीवनमिश्र द्वारा विरचित प्रहसन है। यह प्रहसन दो अंकों वाला है जिसमें घृतकुल्याकुशल प्रधान नायक है। इस प्रहसन के माध्यम से लेखक ने धर्म का महत्व प्रतिपादित करके लोगों को धर्मानुष्ठान के लिए प्रेरित किया है।

प्रथम अङ्क के प्रारम्भ से संबंधियों को आमन्त्रित करके ज्ञातिदूत (नाई) पूगभागसुरता के घर जाता है। वह पूगभागसुरता को कहता है कि रिश्तेदार घृतकुल्याकुशल की पत्नी पतिशीला के प्रायश्चित्तकर्म में सुवासिनियों का विलंब

से आगमन चाहते हैं अतः पतिशीला खिन्न है। ज्ञातिदूत पूगभागसुरता को निमन्त्रित करके चला जाता है।

तदनन्तर घृतकुल्याकुशल अधोच्छिष्टशिष्टाचार्य के साथ तथा पतिशीला पुंपरीक्षिका के साथ प्रवेश करती है। घृतकुल्याकुशल अधोच्छिष्टशिष्टाचार्य से निवेदन करता है कि उनका प्रायश्चित्तकर्म विलक्षण होना चाहिए । लोग प्रायश्चित्तमण्डप कोदेखकर आश्चर्य सहित उसकी प्रशंसा करते हैं। प्रशंसा सुनकर पतिशीला कहती है कि यह मण्डप तो मेरे विवाह मण्डप से भी ज्यादा आकर्षक है। कुशल उसको शान्त रहने को कहता है क्योंकि सगे-संबन्धी दूसरों की उन्नति को सहन नहीं कर सकते हैं।

स्वस्तिवाचन के अनन्तर घृतकुल्याकुशल कहता है कि पतिशीला को अब प्रायश्चित कर्म हेतु अधोच्छिष्ट शिष्टाचार्य के साथ घृतदीर्घिका में प्रवेश करना चाहिए वे दोनों घृतदीर्घिका में प्रवेश करते हैं। संबंधी जन ईर्ष्यापूर्वक मन में विचार करते हैं कि कुछ ऐसा किया जाए जिससे इस प्रायश्चित्त कर्म में घृत की न्यूनता हो जाए।

नेपथ्य में कोई हलवाइयों को कहता है कि मोदक निर्माण आधा ही छोड़ दिया जाए क्योंकि प्रायश्चित्तकर्म में घृत की न्यूनता हो रही है। इसलिए क्यों व्यर्थ ही प्रयत्न किया जा रहा है। धूम्रोद्धट्ट यह सुनकर अधोच्छिष्टशिष्टाचार्य को घृतदीर्घिका से निकाल लेता है । शौचाज्यभाण्ड नामक कोई व्यक्ति अधोच्छिष्टशिष्टाचार्य के शरीर से टपकते हुए घृत को हाथ से पोछकर इकट्ठा करना शुरू कर देता है ।

प्रायश्चित्तगन्ध यह सब देखकर कहता है कि प्रायश्चित्तरूपी मंगलकार्य प्रेताचरण के समान लक्षित हो रहा है। उसी समय मांगल्य सामग्री के साथ सुवासिनियों का प्रवेश होता है । नेपथ्य में कोई कहता है कि सूर्य की उष्ण रश्मियों से बनाए गए मोदक शुष्क हो जाएँगे, उसके बाद घृत लाने का क्या औचित्य ! इस प्रकार क्षुधा से पीड़ित संबंधी जन व्यर्थ ही कलह प्रारम्भ कर देते हैं । हलवाई शीघ्रता से मोदकनिर्माण प्रारम्भ कर देते हैं। शनिशौण्ड कहता है कि घृत के बिना मोदकनिर्माण संभव नहीं है अतः प्रथम घृतपात्र की पूर्ति की जाए उसके बाद ही मोदक निर्माण संभव है। सभी हलवाई शनिशौण्ड के मत की पुष्टि करते हैं। घृतकुल्याकुशल उन सबको सांत्वना देने के लिए जाने को इच्छुक होता है। पतिशीला भी उसका अनुगमन करना चाहती है, परन्तु घृतकुल्याकुशल पतिशीला को कहता है कि उसका यहाँ रहना ही श्रेयस्कर है। तुम्हारे यहाँ स्थित रहते हुए ही घृतपात्र की पूर्ति हो जाएगी। सभी संबंधी जन उच्च स्वर से कहते हैं कि शीघ्र घृत लाया जाए। इस प्रकार असामंजस्य की स्थिति बन जाती है।

तदनन्तर नेपथ्य में सभी जन एवं महिलाएं अपने बच्चों को छोड़कर पलायन करते हुए दिखाई देते हैं क्योंकि वहाँ कुछ शराबी लोग आ जाते हैं वे अनर्गल प्रलाप प्रारम्भ कर देते हैं एवं सुवासिनियों के पास आ पहुँचते हैं। सुवासिनीगण लड्डूओं से ही उन्हें मारना शुरू कर देता है। द्विज गण 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि' ऐसा कहते हुए वहाँ से चले जाते हैं। शराबी लोग भी उन्हीं का अनुसरण करते हुए निकल जाते हैं। पतिशीला और घृतकुल्याकुशल भी उठकर ये कहते हुए चले जाते हैं कि उनकी कार्य सिद्धि नहीं हुई। घृतकुल्याकुशल पतिशीला को समझाता है कि हमारा स्वर्ग में बाधक यह विघ्न यहीं समाप्त हो गया है। अभी प्रत्येक व्यक्ति को दक्षिणा देने का अवसर है।

द्वितीय अङ्क में ग्रामयाचक रङ्कजीभट्ट भी घृतकुशल से दक्षिणाग्रहण के लिए जाता है। उसके पश्चात् ज्ञातिदूत प्रवेश करके कहता है कि जिन्होंने भोजन ग्रहण किया है वे सभी ब्राह्मण दक्षिणा के लिए आ रहे हैं। पतिशीला स्वर्णशलाका लाकर कुशल के हाथ में रख देती है। वह जैसे ही शलाका के टुकड़े करता है तभी दक्षिणा ग्रहण के लिए ज्ञातीय ब्राह्मण कोलाहल करते हुए प्रवेश करते हैं।

घृतकुल्याकुशल आए हुए जनों का बाहुल्य देखकर पतिशीला से कहता है कि इस तरह से तो दक्षिणा की भी न्यूनता हो जाएगी। ज्ञातिदूत उसको कहता है कि आप चिन्ता न करें क्योंकि मेरे पास वराटकों (कौड़ी) की अधिकता है। कुशल एक - एक ब्राह्मण को बुलाकर एक-एक वराटक पतिशीला से प्रदान करवाता है। वराटकों की समाप्ति की चिन्ता करते हुए दो व्यक्तियों को एक वराटक प्रदान किया जाना चाहिए ऐसा निश्चित किया जाता है। ज्ञातिदूत पुनः सुझाव देता है कि सभी ब्राह्मणों को दक्षिणा देना हमारा धर्म है इसलिए कुशल के द्वारा प्रति चार व्यक्तियों को एक वराटक प्रदान किया जाता है। सभी ब्राह्मण स्वस्ति वाचन द्वारा दिशाओं को गुञ्जायमान करते हैं।

तदनन्तर महाकालसर्प गले में डाले हुए गारुडिकों का प्रवेश होता है। उन्हें देखकर सभी पलायन कर जाते हैं। नेपथ्य से आवाज आती है- 'भागो, भागो। क्योंकि राजकीय कोतवाल डिण्डिम घोष के साथ धन का निर्णय करने इधर ही आ रहा है। वह सभी को न्यायालय में ले जाएगा। ये सुनकर सभी वहाँ से पलायन कर लेते हैं। प्रहसन समाप्त होता है।

निष्कर्ष

हरिजीवन मिश्र ने अपने समय के समाज के सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश में आई गिरावट का यथार्थ चित्राण अपाने प्रहसन लेखन से करके समाज में जागृति उत्पन्न करने का प्रयास किया। उनका साहित्य पाठक की चेतना को झकझोरता है तथा जीवन में व्याप्त बाह्याडंबर, मिथ्याचार, जातीय अहंकार पाखंड, सामाजिक अन्याय और कुप्रभावों से लड़ने की प्रेरणा देता है। आकार की दृष्टि से हरिजीवन मिश्र के प्रहसन भले ही छोटे हैं किन्तु उद्देश्य और जागरूकता की दृष्टि से वह बहुत सार्थक हैं। ये प्रहसन ठोस

यथार्थ की पृष्ठभूमि पर लिखे गए हैं जो संस्कृत के व्यंग्य साहित्य के क्षेत्र में अग्रणी पंक्ति में हैं और सामाजिक-राजनीतिक क्षेत्रों के कई गवाक्षों को भी खोलते हैं।

संदर्भसूची

1. प्रहसनों की हस्तलिखित प्रतियां अनूप- लाइब्रेरी बीकानेर में उपलब्ध हैं।
2. कृष्णमाचारियर: हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर, आर-701
3. त्रिपाठी, प्रो. राधावल्लभः संस्कृत साहित्य में प्रहसन, अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद, 1992, पृष्ठ 22
4. वही, पृष्ठ 23
5. उपाध्याय, राम जी: आधुनिक संस्कृत नाटक, पृष्ठ 220
6. पाण्डेय, प्रो. ताराशंकर शर्मा, संस्कृतनाट्यप्रणेता पण्डित हरिजीवनमिश्र, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2000 ई., पृष्ठ 48
7. वही., भूमिका पृष्ठ -X